ISSN 2321 - 9300
वर्ष : 10 अंक 109 अप्रैल 2023

हिंदी मासिक

इंसान

सहयोग
50 रु.

साहित्य, संस्कृति तथा सामाजिक
सरोकारों के लिए प्रतिबद्ध

Chapter in edited book

सतीश खनगवाल की प्रकाशित पुस्तकें

2018

कविता संग्रह

सुलगता हुआ शहर

हिन्दी अकादमी, दिल्ली के सौजन्य से

2021

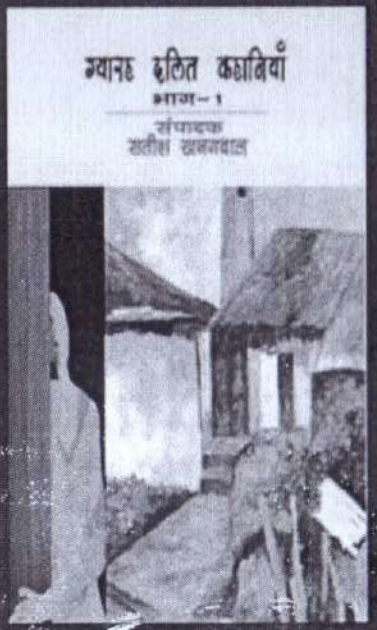

ग्यारह दलित कहानियां

प्रकाशक:

... शीघ्र प्रकाशित

स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर'
जीवन और विचार

प्रकाशक:

बयान

साहित्य, संस्कृति तथा सामाजिक सरोकारों के लिए प्रतिबद्ध हिंदी मासिक

अप्रैल 2023

संपादक
मोहनदास नैमिशराय

सहायक संपादक
रूपचन्द गौतम

संपादकीय सलाहकार
डॉ. जे.आर. सोनी/शेखर/अशोक निर्वाण साक्षी गौतम/ सतीश खनगवाल/थामस मैथ्यू बौद्ध

प्रादेशिक प्रतिनिधि
ब्रजेन्द्र गौतम (इलाहाबाद), डॉ. रामविलास भारती (गोरखपुर), गोरख बनसोड़े (सातारा), बुद्धशरण हंस (पटना), हरीश मंगलम (अहमदाबाद), रेखा भारती, (लखनऊ)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
बी.जी. 5ए/30-बी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली, 110063
मोबाइल : 8860074922

आवरण सज्जा : संदीप बौद्ध

प्रकाशक मुद्रक व स्वामी मोहनदास नैमिशराय द्वारा एम्सपो प्रिन्ट एडं मीडिया, 97/12, सुंदर पैलेस, ज्वाला हेडी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063 से मुद्रित

बी.जी. 5ए/30बी, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063 से प्रकाशित किया।

प्रकाशित रचनाओं के विचारों से संपादक का सहमत होना जरूरी नहीं है।

बयान से संबन्धित सभी विवादस्पद मामले दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

बयान पत्रिका से जुड़े सभी साथी अवैतनिक हैं।

अनुक्रम

संपादकीय

समाज को धर्म/जाति और नस्ल के आधार पर बांट रहे हैं राजनीतिज्ञ — 4

लेख

धर्म, धर्म नहीं राजनीति का ही दूसरा रूप है / *संजीव खुदशाह* — 7

मंदिरों की इन्द्रधनुषी भव्य चमक : देश में पुजारियों / पुरोहितों की एक सशक्त समानांतर अर्थव्यवस्था / *दिनेश आनन्द* — 8

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का धर्मांतरण सामाजिक सांस्कृतिक क्रांति की उर्जा है / *मिलींद लक्ष्मण फुलझेले* — 23

रामचरितमानस का शूद्र-पाठ / *हरिनारायण ठाकुर* — 26

एक दार्शनिक और एक वैज्ञानिक जिन्होंने आधुनिक दुनिया में भगवान की सत्ता को मानने से इनकार किया / *दिनेश आनन्द* — 31

हाशिये पर छूटा पारधी समाज / *प्रो. डॉ. राजश्री दगडू भामरे* — 36

साक्षात्कार

अपने शिक्षा संस्थानों के बिना दलित महापुरुषों की विचारधारा विकसित नहीं हो सकती / *प्रो. जोशी* — 38

प्रदीप कुमार ठाकुर द्वारा आंबेडकरवादी चिंतक, कवि/कथाकार डॉ. कुसुम वियोगी से लिया गया साक्षात्कार — 39

वरिष्ठ साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया से सतीश खनगवाल की बातचीत — 41

हिंदी-मराठी के लेखक, अनुवादक गुरुदेव डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी से प्रो. नयन भादुले-राजमाने की बातचीत — 45

टिप्पणी

मन्दिरों में दलित पुजारियों की नियुक्ति के निहितार्थ / *तेजपाल सिंह 'तेज'* — 48

कविताएँ– *मामचंद सागर, सुशांत सुप्रिय, लोकेन्द्र जहर, इंजीनियर महेन्द्र सिंह, महीलाल कैन, प्रो. डॉ. राजश्री दगडू भामरे* — 49-52

समीक्षात्मक आलेख

प्रतिपक्ष में केवल कविता / *डॉ. एन. सिंह* — 53

ओमप्रकाश वाल्मीकि वाया चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु / *सुरेश कुमार* — 55

उत्तर प्रदेश का सितारा बिहार में चमका / *डॉ. रूपचंद गौतम* — 58

हिन्दी में अम्बेडकर जनसंचार / *एड. गुरुप्रसाद मदन* — 59

बिहार से एक महत्वपूर्ण आत्मकथा की आमद / *डॉ. मुसफ़िर बैठा* — 61

प्रेरणा

अपने कार्य से जवाब देना हमने सीखा — 65

बयान

कर्तव्य एवं निष्ठा का बयान, साहित्य और संस्कृति का बयान / *साक्षी गौतम* — 66

हिंदी-मराठी के लेखक, अनुवादक गुरुदेव डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी से प्रो. नयन भादुले-राजमाने की बातचीत

आप हिंदी-मराठी के माध्यम से श्रोताओं और पाठकों के मन-मस्तिष्क पर छाने वाले व्यक्तित्व के धनी रहे हैं। निष्णात अध्यापक, सुधि आलोचक, बेल्लौस वक्ता के रूप में आप विख्यात है। हिंदी भाषा तथा साहित्य के प्रति आपकी निष्ठा बेजोड़ है।

प्रश्न 1. आपका बचपन कहाँ और कैसे गुजरा? और आपके शिक्षा दीक्षा के बारे में बताइएं?

उत्तर : मेरा सारा बचपन गरीबी में या कहूं दरिद्रता में बीता हैं। उम्र के 7-8 वर्ष से ही मैं मजदूरी के छोटे-छोटे काम करता रहा। यह सिलसिला करीब 8 वी कक्षा तक चलता रहा। इसके बाद थोडी सी आर्थिक स्थिरता आई, क्योंकि घर में हम नौ जन लोग थे पिताजी घर पर अकेले कमाने वाले थे। वो भी दुकानों में छोटे-मोठे काम करते जैसे मुनिम के तौर पर जिन्हें हर दीपावली में निकाल दिया जाता था बाद में इनकी नियुक्ती होती थी। ऐसी अस्थिर स्थिति में हम जिए हैं। उस वक्त निजाम रियासत या हैदराबाद अभी-अभी जो मुक्त हुआ था, सन 38 में मैं पहिली कक्षा में गया। चौथी कक्षा से मुझे बरसरी नाम की शिष्यवृत्ती मिलती थी। साल में 5 रु. उस वक्त बहुत बड़ी राशि थी। उस तुलना में। क्योंकि उस वक्त एक पुलिस की नोकरी करते हो तो 50 रू.वेतन मिलता था। और सरकारी नोकरी आदि लोगों को, कलेक्टर आदि लोगों को 250 रू. से 300 रु. वेतन हुआ करता था। यह स्थिति थी। तो उस वक्त मेरे लिए 5 रू. बहुत बड़ी राशि थी। इस तरह से मेरी शिक्षा धीरे-धीरे होती गई।

यह भी सही हैं कि हिंदी एम.ए. केवल भारत सरकार के एक शिष्यवृत्ती के कारण कर सका हूं। क्योंकि मराठी, हिंदी और अंग्रेजी मे ग्रुप में पूरे कर्नाटक में प्रथम था और बायोलॉजी ग्रुप में फिजिक्स, केमेस्ट्री, बॉटनी, जूलाजी में मैं राज्य में प्रथम था। मुझे मेडिकल में प्रवेश मिलना बेहद आसान था। परंतु घर की दरिद्रता इतनी थी कि गुलबर्गा से धारवाड रेल से जाने- आने तक के पैसे नही थें। धारवाड में ही मेडिकल कॉलेज था। इस कारण उच्च शिक्षा मेरे लिए संभव ही नहीं हैं यह स्पष्ट था। दोस्तों ने मिलकर कॉलेज में प्रवेश दिया था। उन दिनों पोस्ट ऑफिस में जो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता हैं उसको छ महिने में नोकरी मिलती थी। मैं उसी के लिए प्रयत्न कर रहा था। परंतु तभी 1960 में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने संपूर्ण देश में से 10 विद्यार्थियों को हिंदी की उच्च शिक्षा के लिए चुना। शिष्यवृत्ती थी प्रति माह 75 रु.। अगर मुझे पोस्ट में नौकरी मिलती तो भी मुझे 60 रु. वेतन मिलता। मुझे शिष्यवृत्ती 75 रु.थी। और मैं भविष्य में क्या बनूँ इसका निर्णय मैंने नहीं लिया उसका निर्णय भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने किया। वो शिष्यवृत्ती थी इसीलिए मेरी पढ़ाई हुई। शिष्यवृत्ती नहीं होती तो मैं पोस्ट ऑफिस में अधिक से अधिक ए ग्रेड के क्लर्क के रूप में रिटायर हुआ होता। केवल भारत सरकार के शिष्यवृत्ती के कारण मैं एम. ए. हिंदी कर पाया। एम.ए. हिंदी इलाहाबाद से करने का कारण भी आर्थिक है। भारत सरकार के पत्रक के नियमानुसार एम.ए.के लिए 100 रु. शिष्यवृत्ती दी जाती। अगर विद्यार्थी हिंदी प्रदेश में जाकर एम. ए. करता हो तो उसको 25 रू. ज्यादा दिये जाते। 25 रू.रुपये की मोह के कारण मैं इलाहाबाद गया। मैंने पिताजी से कहा की आपको पहिले की तरह मैं 75 रू. भेजूंगा और 25 रू. में मै वहाँ रहूंगा। मैं वहा रहा। वहा भी मैं पूरे इलाहाबाद युनिव्हर्सिटी में हिंदी एम. ए. में हिंदी भाषकों से टक्कर लेते हुए तृतीय स्थान पर आया। एम. ए. प्रथम श्रेणी प्राप्त करके जून के किसी तारीख के संचार में दयानंद शिक्षण संस्था का विज्ञापन आया। तो मैं विज्ञापन देखकर मुलाकात देने लातूर आया। तो तब एक मित्र की पैन्ट और एक मित्र का बुशर्ट पहनकर मैं आया था। बस के आने-जाने के केवल रुपये थे। इस में केवल एक रुपया जादा था। मुझे आज भी याद हैं पुराने लातूर बस स्टॅन्ड के पीछे जो पुराना रेल्वे स्टेशन था वहाँ चार आने के मुरमुरे लेकर मैंने रात गुजारी। इंटरव्यू दिया। 36 प्रत्याशी थे। एक बार, दो बार तीन राऊंड में इंटरव्यू हुआ और तिसरी बार मेरा चुनाव हुआ। इस संस्थाने मुझ पर इतना प्यार किया कि मैंने कहीं पर भी जाने का सोचा नहीं। प्रिन्सिपल के रूप में भी मुझे बुलावा आया। बसवेश्वर कॉलेज में दो इन्क्रिमेंट देकर बुलाया पर मैंने नकारा। और मै जिंदगी भर दयानंद महाविद्यालय में रहा खुशी से, बड़ी प्रसन्नता से। पढ़ना- लिखना मेरी मजबूरी थी। पढ़ता रहा, लिखता रहा। यही मेरा जीवन परिचय हैं।

अध्यापन कर्म की शुरुवात दयानंद में हुई। 1965 में मैं नियुक्त हुआ। पहला साल जरा कठिन गया। परंतु मेरे छात्रों ने मुझपर अत्याधिक प्रेम किया। संस्था और छात्र इनके प्रेम में इतना डूब गया की कहीं और जाने का मैंने सोचा भी नहीं। और इसका सबसे बड़ा प्रमाण आहे की बीस-बाईस साल पहले जो नयन भादुले-राजमाने मेरी विद्यार्थीनी थी, वह आज भी उतनी ही श्रद्धा से मेरे पास आती है। यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धी है।

प्रश्न 2. कुल-मिलाकर 37 वर्ष आपने अध्यापन किया है तो अध्यापक के रूप में आपके अनुभव कैसे रहे हैं?

उत्तर : इलाहाबाद में पढ़ते समय मेरे प्राध्यापकों ने जो संस्कार डालें, अध्यापन के कारण विद्यार्थियों में अधिक प्रिय रहा। विश्व के बहुत बड़े भाषा वैज्ञानिक डॉ. हरदेव बाहरी जो मुझे अपना मानसपुत्र मानते थे। उन्होंने मुझे कहा था, ष्देखो बेटे, अपने छात्रों से कभी भी मराठी में मत बोलो। उनसे हमेशा हिंदी में बोलो। इसके हमेशा फायदें होते हैं। एक फायदा एक तो उनके कानों पर अच्छी हिंदी जाती हैं। और दूसरी बात वह हिंदी बोलने की कोशिश करते हैं। अपनी जुबा अगर सुरक्षित रखनी हैं, तो केवल कक्षा में हिंदी नहीं तो बाहर भी हिंदी बोलो। इसीलिए मेरी जुबा जो बहुत मेहनत से मैंने इलाहाबाद में तयार की, आज भी हिंदी भाषिक मुझे पहचान नहीं पाते, की मेरी मातृभाषा कोई अन्य हैं। दूसरी बात मेरे और एक प्राध्यापक थे रघुजी उन्होंने कहा, "अगर अध्यापक बनना चाहते हो, तो किसी कवि की एक रचना पढ़कर कभी भी पढ़ाया मत करो। उस कवि की सभी रचना पढ़ों। प्रेमचंद की एक कहानी बढ़ानी हैं तो प्रेमचंद का पूरा साहित्य पढ़ों।" तो ये आदत लगने से और मेरी संस्था और प्राचार्य हालाकी मैं डिपार्टमेंट में 28 वर्ष तिसरे स्थान पर रहा परंतु उन्होंने मुझे इतना प्यार दिया कि मैं चाहू जितनी पुस्तकें खरीद सकता था। इसकारण आज भी दयानंद महाविद्यालय में सभी कवि और लेखकों की समग्र रचनाएं हैं। उनकी समग्र रचनाएं पढ़कर ही मैं पढ़ता रहा। तिसरी बात अध्यापन के संदर्भ में साहित्य को पढ़ाने के लिए समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, संस्कृति, इतिहास आदि के अध्ययन की भी जरुरत होती हैं। और मैं अध्ययन करता रहा।

प्रश्न 3. साहित्य विधाओं में से कौनसी विधा आपको प्रिय हैं?

उत्तर : मेरी सबसे प्रिय विधा कविता है। जिसपर मैंने कम लिखा हैं। मैंने ज्यादा लिखा हैं उपन्यास और कहानियों पर। काव्यसंग्रह की समिक्षाएं मैंने की है। जिसकी एक पुस्तक भी प्रकाशित है। हिंदी में कविताओं पर मैंने बहुत कम लिखा हैं। कविता मेरे सबसे बड़ी प्रिय विधा हैं।

प्रश्न 4. आपकी संपादित साहित्य कृतियॉ जो हैं उनके बारे में आप क्या कहेंगे?

उत्तर : संपादन मैंने बहुत स्वेच्छा से नहीं किया हैं। ऐसा हुआ की, राजस्थान के बहुत बड़े साहित्यकार सांबरिया हैं। उन्होंने एक दिन मुझे फोन करके कहा की, "मेरी कहानी का आप संपादन कीजिए।" मैंने कहा, "हिंदी प्रदेश में इतने बड़े लोग बैठे हैं, आप क्यूं मुझे इतना आग्रह कर रहे है?" तो वह बोले, "नहीं नहीं आपके नाम के कारण मुझे अधिक वेटेज मिलेगा।" तो मैंने सांबरिया जी के कहानियों का संपादन किया। वह किताब दिल्ली से छपी। उसके बाद जब मैं ठाणे में बेटी के पास था तो हिंदी की एक श्रेष्ठ कहानीकार जो मुझे अपना बड़ा भाई मानती हैं सुधा अरोड़ा जी ने कहा, "दादा मेरी कहानी का संपादन आपको करना हैं।"बहुत आग्रहपूर्वक उन्होंने कहा फिर मैंने उनके कहानियों का भी संपादन किया। दत्ता भगत जो मराठी के बहोत बड़े नाटककार हैं, उनके तीन छोटे-छोटे नाटक, दो उनके मित्रों ने अनुवाद किए थे। एक मैंने अनुवाद किया था। तो उन्होंने संपादन करने को कहा, तो मैंने संपादन किया। इसलिए जो संपादन हुआ वह लोगों के प्यार के कारण हुआ हैं। मैंने कोई तय कर के, यह संपादित करना हैं करके नहीं हुआ हैं।

प्रश्न 5. आपने अनुवाद भी बहुत सारे किए हैं। हिंदी से मराठी में, मराठी से हिंदी में, तो आपकी नजर में अनुवाद क्या है?

उत्तर : अनुवाद एक सांस्कृतिक प्रक्रिया हैं। एक संस्कृति से दुसरी संस्कृति से जोड़ने की। अनुवादक एक सांस्कृतिक दूत होता हैं। दोनों भाषाओं में समान अधिकार रहने से अनुवादक कोई नहीं होता हैं। दो भाषाओं की संस्कृति, वहॉ के रीति- रिवाज इन सब की जानकारी उसे रखनी पडती हैं। नहीं तो आंख बंद कर के अनुवाद करेंगे तो वह अनुवाद मूल कृति की अनुभूति वहॉ तक नहीं पहूंचाता हैं। एक छोटासा उदाहरण देता हूं- मराठी के एक प्रसिद्ध नाटककार जो स्मृतिशेष हैं- रामनाथ चव्हाण। उनका एक नाटक है 'बामणवाडा' उमेदवार एक ब्राम्हण युवती एक अत्यंत प्रतिभा संपन्न और बहुत खूबसूरत ऐसे दलित अधिकारी से विवाह कर लेती है। इस विवाह को उसकी माँ का भयंकर विरोध होता है। पिताजी का समर्थन होता हैं। वह बहुत बड़े बंगले में अपने पति के साथ रहती हैं। विवाह के 15-20 दिन बाद उसके मां की कुछ सहेलियॉ उसको मिलने आती हैं। उनके आने के बाद उसको बड़ी खुशी होती है क्योंकि उसके मां ने उनसे संबंध काट दिए थे। वह उनका आदर सत्कार करने के लिए पानी लाती हैं, वह पानी नहीं पीते हैं। शरबत पुछती है, वह नहीं लेते। चाय नहीं लेते। वह बहुत बुद्धिमान है। वो समज जाती है दलित के घर का पानी नहीं पीना चाहते हैं। अंत में प्रसंग ऐसा हैं कि वह जब निकलती है तो महाराष्ट्र की एक परंपरा है, सुहासिनी अगर हो तो जाते समय सिंदूर लगाती है। तो वह सुंदर लगाने के लिए खड़ी हो जाती है। तो वह तीनों औरतें बड़ी चालाकी के साथ उसका स्पर्श टालते हुए निकल जाती हैं...और पर्दा गिर जाता है। अब इस प्रसंग का अनुवाद कैसे करना हैं। मुझे लगा की भाई ये परंपरा तो हिंदी भाषी प्रदेश में नहीं है फिर कैसे करना चाहिए, क्योंकि की मंच पर करना हैं और यह बहोत अप्रतिम नाटक हैं। लातूर में भी यह नाटक हुआ है। "कुंकवाचा करंडा घेऊन ती उभी आहे आणि त्यात तिचा स्पर्श टाळून निघून जातात तिचा चेहरा उदास...उदास...उदास...होत जातो". यह दृश्य हिंदी भाषिकों के पास कैसे जाएगा। उसके सिंदूर लगाने की कृति को वह नहीं समज पाते। यह केवल मराठी भाषी ही समज पाता है कि एक दलित पुरुष के साथ उसके संबंध है इसलिए उसका स्पर्श उन्होंने टाला हैं। अब ए हिंदी में कैसे ले जायेंगे? मैंने अपने हिंदी भाषी मित्रों से लेखक-लेखिकाओं से फोन किए। उन्होंने कहा ऐसी कोई परंपरा नहीं है। वहा पर जाते समय कुछ देने की परंपरा है क्या? तो कोई परंपरा नहीं है। राजस्थान के कुछ जिलों में सुवासिनी को पान दिया जाता है। परंतु यह सारे हिंदी भाषी

प्रदेश में नहीं है। बहुत सोच- विचार के साथ, लेखक के साथ चर्चा करके यह प्रसंग ही मैंने निकाल दिया। अनुवादक के लिए संस्कृति को जानना बहुत जरुरी हैं। नहीं तो बात नहीं पहुंचती। और आज के अनुवाद जब मैं देखता हूं तो बहुत चिढ़ आती है। इतनी भयंकर गैर जिम्मेदारी है कि मूल बात नहीं पहुंचती। मेरी एक पुस्तक हैं 'अनुवाद का समाजशास्त्र' उसमें सारा विस्तार हैं। उसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ है। जे. एन. यु. के दो प्राध्यापकों ने किया हैं। 'सोशॅलजी ऑफ ट्रान्सलेशन' शीर्षक से है। मराठी में 'अनुवाद वर्णव्यवस्था आणि मी' शीर्षक से है। हिंदी में भी हैं। वह तिनों भाषा में गयी हैं। हिंदी और मराठी में दो संस्करण निकले हैं।

प्रश्न 6. दलित चिंतन और दलित अनुवाद की तरफ आप कैसे मुड़े?

उत्तर : यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। उपेक्षित लोगों के, अपने बचपन के जिंदगी के बारे में मैंने कई बार बात की हैं। मैं बचपन से ही मजदूरी के काम करता रहा। मेरे आस-पास सभी जाति और धर्म के लोग राहते थे। हमारे बस्ती के लोग सवेरे मेहनत-मजदूरी के लिए निकलते, औरतें घर पर का काम करके मजदूरी के काम भी करती। बच्चे भी यहीं करते।

परिणामतः इस शोषित वर्ग के प्रति मेरी सहानुभूती एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। इस कारण भले ही मेरा वर्ग चरित्र बदल गया हो, तो भी मेरी प्रतिबंधता उनसे ही होगी और है। अपने यातना के बोझ से मुक्त होने के लिए मेरे सामने दो ही मार्ग थे एक तो मैं खुद अपनी आत्मा को सुजनात्मक रूप देता अथवा अन्य यातनामय जीवन जीने वालों की सृजनात्मक कृतियों का अनुवाद करता। तो मैंने अनुवाद करने का सोचा।

राष्ट्रीय स्तर प्राप्त होने में दलित लेखकों की आत्मकथाएं तथा अन्य रचनाओंके साथ दलित रचनाओं के अनुवादकों का भी महत्वपूर्ण योगदान है आज दलित साहित्य को वैश्विक पहचान मिली है।

प्रश्न 7. आंबेडकरवादी विचारधारा के बारे में आपका क्या चिंतन है?

उत्तर : करीब चार दशक पहिले मध्य प्रदेश द्वारा मराठी दलित साहित्य पर एक संगोष्ठी इन्दौर में आयोजित की गई थी। मराठी के प्रतिष्ठित दलित लेखकों, समीक्षकों तथा कवियों के साथ मैं भी इस संगोष्ठी में निमंत्रित था। आज से कई ज्यादा उस समय दलित साहित्य के प्रति जिज्ञासा थी।

सन 1985 से मैं डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के ग्रंथों को, उनकी जीवनियों को पढ़ता रहा हूं। इन्हीं दिनों में दलित साहित्य की रचनाओं का भी अनुवाद शुरू किया। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के विचारों से मैं पूर्ण रूप से प्रेरित और प्रभावित रहा हूं।

प्रश्न 8. अब तक आपने अध्यापक, लेखक, वक्ता, संपादक आदी भूमिकाएं निभाई हैं। लेकिन फिर भी कभी ऐसा लगता है कि कुछ करना था, रह गया?

उत्तर : नहीं मैं बहोत अपने जीवन को सार्थक समझता हूँ। मुझे किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं रही है। और मेरे छात्रों ने, मेरे परिवार ने मुझे इतना कुछ दिया है कि मुझे किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं रही है। परंतु मेरे कुछ निकट के मित्रों को जो मराठी के लेखक हैं, उनका यह कहना है कि मुझे आत्मकथा लिखनी चाहिए। विशेषतः मेरा बचपन जिस तरिके से गया, जो संघर्ष करते हुए मैं आया। तो उनका यह कहना है कि मुझे लिखना चाहिए। यह आग्रह मराठी के प्रसिद्ध लेखक भालचंद्र नेमाडे से लेकर प्रज्ञा दया पवार तक सबने किया हैं। मुझसे कहा, "कभी तो बैठकर अपनी आत्मकथा लिखो।" मैं आत्मकथा लिखना तो नहीं चाहता। तो उन्होंने ने कहा यह सब कुछ उपन्यास के रूप में तो लेकर आओ। परंतु लिखो, मराठी में लिखो। मेरे मन की तयारी हो रही है। लिखुंगा, या नहीं लिखुंगा यह नहीं मालूम। एक तो अतीत से जाने से मुझे डर लगता है। मैं अपने भूतकाल को भूलना चाहता हूं। फिर उसमें गया कि मुझे मानसिक रूप से बहोत तकलिफ होती है। इसीलिए एक लेखक को अपने भूतकाल से टकराना और उसको शब्दबद्ध करना यह अत्यंत जटिल और बहुत ही पीड़ादाई प्रक्रिया है। मैं अगर जाऊंगा तो निकलूंगा की नहीं, नहीं मालूम। कोशिश करने की इच्छा है, अभी तो मैंने कुछ नहीं किया है।

प्रश्न 9. कोई ऐसी घटना जिसे टर्निंग पॉईंट कहा जा सकता है, हमें बताइएं।

उत्तर : हिंदी एम.ए. केवल भारत सरकार के एक शिष्यवृत्ती के कारण कर सका हूं। क्योंकि मराठी, हिंदी और अंग्रेजी मे ग्रुप में पूरे कर्नाटक में प्रथम था और बायोलॉजी ग्रुप में फिजिक्स, केमेस्ट्री, बॉटनी, जूलाजी में में राज्य में प्रथम था। मुझे मेडिकल में प्रवेश मिलना बेहद आसान था। परंतु घर की दरिद्रता इतनी थी कि गुलबर्गा से धारवाड रेल से जाने- आने तक के पैसे नही थें। धारवाड में ही मेडिकल कॉलेज था। इस कारण उच्च शिक्षा मेरे लिए संभव ही नहीं हैं यह स्पष्ट था। दोस्तों ने मिलकर कॉलेज में प्रवेश दिया था। उन दिनों पोस्ट ऑफिस में जो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होता हैं उसको छ महिने में नोकरी मिलती थी। मैं उसी के लिए प्रयत्न कर रहा था। परंतु तभी 1960 में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने संपूर्ण देश में से 10 विद्यार्थियों को हिंदी की उच्च शिक्षा के लिए चुना। शिष्यवृत्ती थी प्रति माह 75 रु.। अगर मुझे पोस्ट में नौकरी मिलती तो भी मुझे 60 रु. वेतन मिलता। मुझे शिष्यवृत्ती 75 रु.थी। और मैं भविष्य में क्या बनूँ इसका निर्णय मैंने नहीं लिया उसका निर्णय भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने किया। वो शिष्यवृत्ती थी इसीलिए मेरी पढ़ाई हुई। केवल भारत सरकार के शिष्यवृत्ती के कारण मैं एम. ए. हिंदी कर पाया। मुझे उच्च शिक्षा के लिए भारत सरकार की शिष्यवृत्ती मिली अगर नहीं मिलती तो मेरी उच्च शिक्षा की पढ़ाई नहीं होती। वहीं एक जिंदगी में बड़ा टर्निंग पॉईंट था।

प्रश्न 10 आपकी पारिवारिक सदयस्थिति कैसी है?

उत्तर : पारिवारिक स्थिति संतोषपूर्ण हो तो जीवन परिपूर्ण आंनददाई होता है। मेरे परिवार ने मेरा साथ दिया इस कारण मैंने आज जो कुछ भी किया है वह कर पाया हूँ। मेरा बचपन चाहें जितना संघर्षपूर्ण रहा हो

किन आज मै खुशहाल जिंदगी जी रहा हूँ।

प्रश्न 11. समकालीन साहित्य परिवेश के बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तर : मैं बहुत प्रसन्न हूं। नई पिढ़ी बहोत अच्छा लिख रही हैं। हिंदी और मराठी में भी। और मैं आधुनातन चीजें पढ़ता हूं। बहोत ही ठोस जमीन पर खड़े होकर वह लिख रहीं हैं, अपने छटपटाहट को। इसीलिए इस साहित्य के प्रति में बहोत आश्वस्त हूं।

प्रश्न 12. अब आपका क्या लेखन शुरु है स भविष्य में कौनसे विषय पर आप लिखना चाहते है?

उत्तर : साहित्यिक मित्र परिवार के मतानुसार मुझे आत्मकथा लिखनी चाहिए, लेकिन मैं इन संघर्षरत पलों को पुनरू जीना नहीं चाहता। इसकारण अभी अस्वस्थ हूं, हो सकता हैं मैं उपन्यास विधा में आगे जाकर कुछ लिखूं।

धन्यवाद!

आपके वर्तमान और भविष्यकालीन लेखन के लिए हार्दिक बधाई और आपके आनंददाई, खुशहाल आरोग्य के लिए मंगल कामनाए...!

निवास, पंचवटी नगर, बार्शी रोड, लातूर-413512
मो. नं. 8805426071 / 9421692551
(साक्षात्कारकर्ता मराठी की प्रसिद्ध लेखिका हैं। तथा हिंदी अभ्यासक, सामाजिक कार्यकर्ता हैं।)

●●

मन्दिरों में दलित पुजारियों की नियुक्ति के निहितार्थ

तेजपाल सिंह 'तेज'

(जन्म 1949), स्टेट बैंक से सेवानिवृत्त, आपकी गजल, कविता, और विचार-विमर्श की लगभग दो दर्जन से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं–दृष्टिकोण, ट्रैफिक जाम है, गुजरा हूँ जिधर से, हादसो के शहर में, तूंफ़ाँ की ज़द में (गजल संग्रह), बेताल दृष्टि, पुश्तैनी पीड़ा आदि (कविता संग्रह), रुन-झुन, खेल-खेल में, धमाचौकड़ी आदि (बालगीत), कहाँ गई वो दिल्ली वाली (शब्द चित्र), सात निबन्ध संग्रह और अन्य। तेजपाल सिंह साप्ताहिक पत्र ग्रीन सत्ता के साहित्य संपादक, चर्चित पत्रिका अपेक्षा के उपसंपादक, आजीवक विजन के प्रधान संपादक तथा अधिकार दर्पण नामक त्रैमासिक के संपादक भी रहे हैं। आप इन दिनों स्वतंत्र लेखन में रत हैं। आप हिन्दी अकादमी (दिल्ली) द्वारा "बाल साहित्य पुस्कार" (1996-96) तथा "साहित्यकार सम्मान" (2006-07) से नवाजे जा चुके हैं। संपर्क : ई-3/ए-100 शालीमार गार्डन, विस्तार-2, (साहिबाबाद), गाजियाबाद, उ.प्र.-201005, मो. : 9911414511

हिन्दू धर्म से निरंतर अलग होते जा रहे दलित जातियों के लोगों के हितों की चिंता हिन्दूवादी शक्तियों को आज भी नहीं है, चिंता है तो बस इतनी कि हिन्दू धर्म से विघटित हुए दलित लोगों को वापिस हिन्दू धर्म में कैसे मिलाया जाय। इस हेतु प्रत्येक स्तर पर विविध प्रकार से नापाक प्रयास किए जा रहे हैं। पुजारी बनाए जाने वाले दलितों को हिन्दू धर्म से विघटित लोगों से संपर्क साधकर उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में वापिस लाने का काम दिया जा रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि आर एस एस और भाजपा भारत को हिन्दू राष्ट्र बना देना चाहते हैं और इसको साकार करने की रणनीति पर विचार करने के लिए यहाँ-वहाँ छोटे बड़े हिन्दू राष्ट्रवादी संगठन मीटिंग करते रहते हैं। आर एस एस और हिंदू महासभा से जुड़े हिंदू राष्ट्र बनाने के इस विचार में 1992 में बाबरी मस्जिद गिराने के बाद एक नई जान-सी पड़ी थी। केंद्र में मोदी सरकार बनने के साथ ही आर एस एस और भाजपा फुफकारने ही नहीं डसने भी लगे थी। और उत्तर प्रदेश में योगी आदित्यनाथ को मुख्यमंत्री बनवा कर संघ ने तरह-तरह के नए पुराने उग्र हिंदुत्ववादियों को पूरी तरह से बेलगाम कर दिया। तथाकथित हिंदू राष्ट्रवादी तत्व ये चाहते हैं कि भारत में हर किसी का खान-पान, पहनावा, रहन सहन और पूजा पद्धति आदि एक समान वैसा हो जैसा ये मानते और चाहते हैं।

विज्ञान एवं तकनीकी के वर्तमान युग में भी धार्मिक कट्टरपंथी अपना-अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए नित नए-नए तरीके तलाशने में लगे हैं। धर्म के नाम पर उग्रवाद का सहारा लेना भी आजकल नैतिक हो गया है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारे आदि का विवाद उठाना, लोगों की धार्मिक भावनाओं को भड़काना आदि इसी क्रम के आम कृत्य हैं। यही कारण है कि समय-समय पर धर्म परिवर्तन के मामले अक्सर प्रकाश में आते रहते हैं।

जब हिन्दू समाज के दलित वर्ग के लोग हिन्दू धर्म छोड़कर कोई दूसरा धर्म ग्रहण करते हैं तो हिन्दू धर्म के नेता खूब हो-हल्ला मचाते हैं। वस्तुतः दलित वर्ग के लोग दूसरा धर्म इसलिए ग्रहण करते हैं कि वे अच्छी तरह समझ गए हैं कि हिन्दू धर्म में रहते उन्हें न तो सामाजिक-आर्थिक समानता मिलेगी और न ही भौतिक अत्याचारों से मुक्ति।

अन्य धर्मों के मुकाबले, हिन्दू धर्म अध्यात्मिकता अर्थात रूढ़ीवादिता को अधिक प्राथमिकता देता है। उल्लेखनीय है कि भारत में हिन्दू धर्म जाति-प्रथा के पोषक तत्वों में प्रमुख हैं। हिन्दू धर्म ने श्रमिक वर्ग को अभावों भरा धर्मान्ध जीवन ही दिया है। फलतः पूंजीवादी वर्ग पूंजी के माध्यम से बिना किसी श्रम के धनी बना है और श्रमिक वर्ग सिर पर धर्मान्धता का ताज पहन कर पूंजी से वंचित धर्म के बल पर जीवन चलाता है। आज भी दलित धर्म-परिवर्तन करने में अपनी मुक्ति देखते हैं।

उल्लेखनीय है कि धार्मिक अधिकारों

(शेष पृष्ठ 57 पर...)